International Research Vision (Int. Res. Vn.)
ISSN: 2454-3721
Volume 2 Issue 2: 20-23, 2016

भारतीय दास के अध्ययन में अंग्रेजों की दिलचस्पी

अजय कुमार झा
इतिहास विभाग, एम0 आर0 एम0 कॉलेज, दरभंगा
ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार–846004

प्रारंभ में एक लंबे अन्तराल तक भारतीय शिक्षाविदों ने भारतीय समाज का अध्ययन प्रायः सैद्धान्तिक संस्कृत ग्रंथों अर्थात् ''धर्मशास्त्रों'' के अनुसार किया था। अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में जिन भारतीय शिक्षाविदों ने भारतीय समाज का अध्ययन किया उनमें से अधिकांश इस समाज के हिन्दू घंटक जो इसका बुनयादी जातीय विशेषता–मूलक अवयव था–का स्पष्ट और सही चित्र प्रस्तुत नहीं कर सके। कम–से–कम बंगाल जैसे सबसे पहले अंग्रेज शासन के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रों में तो इस समाज में स्पष्ट ऐसे अहिन्दू तत्व थे, जो मुगल साम्राज्य या उसी का अनुसरण करने वाले विदेशी या मुसलमान के नाम पर समाज पर हावी हो रहे थे। वहॉ हिन्दू तत्व का अस्तित्व अवश्य था और वह भारी संख्या तथा विशिष्ट रूप में था, लेकिन उसका एक अत्यन्त जटिल आंतरिक ढ़ॉचा था जो बाहरी दुनियॉ की ऑखों से ओझल था। उसे स्पष्ट देखा जा सकता था और उसका महत्व भी स्पष्ट ही था, लेकिन वह विश्लेषित नहीं हो पा रहा था। तथापि वह अपनी शक्ति के विषय में सचेत था। उसकी अपनी परंपराऍ थी, अपना साहित्य था, अपने विद्वान थे और अपनी शास्त्रीय शिक्षा प्रणाली थी। उसकी स्थिति, उसकी प्रकृति,उसके उद्भव तथा उसके विकास का भी परीक्षण किया जा सकता था, जिसने उसे तत्कालीन दशा तक पहुॅचाया था। यह अध्ययन देश को जानने तथा उस पर शासन करने के दोहरे उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक भी था।

मुस्लिम प्रशासन, जिसने बंगाल में अंग्रेजी राज्य का पथ प्रशस्त किया था, की भाषा फारसी थी। यह भाषा समूचे देश के सामान्य व्यवहार की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी, क्योंकि साहित्यक प्रतिष्ठा के अतिरिक्त इसे विविध भाषाओं वाले इस देश में संपर्क का माध्यम होने का व्यवहारिक लाभ प्राप्त था। फिर भी फारसी से भारत केवल सतहीज्ञान ही प्राप्त हो सकता था। अतः बहुत शीध्र ही यह बात सामने आ गई कि संस्कृत ही, जिसमें पहले केवल विद्वानों ने ही रूचि दिखाई थी भारत के वास्तविक विस्तृतज्ञान की कुंजी है और इसलिए कलकत्ता की एशियाटिक सोसाइटी और बंगाल के अंग्रेजी प्रशासन ने शीध्र ही अब उसी संस्कृति की ओर ध्यान देना प्रारंभ कर दिया जिसके प्रति कुछ समय पहले एशियाटिक सोसाइटी के संस्थापक विलियम जोन्स ने ऑकतेल द्यूपेरों के अध्ययनों की उपयोगिता का विरोध करते हुए तिरस्कारपूर्ण व्यवहार करना उचित समझा था।

उनलोगों ने कलकत्ता के पण्डितों के माध्यम से प्रमुख ग्रंथों की व्याख्या करवायी। सन 1794 में विलियम जोन्स ने 'मनु' का अनुवाद प्रकाशित किया, जिसका यूरोप में भारतीय समाज के रहस्योद् धाटन के रूप में तत्काल स्वागत हुआ। फिर 1794 में इसका जर्मन भाषा में पुनः अनुवाद हुआ। कोलबूक की पुस्तक 'डायजेस्ट ऑफ हिन्दू ला' 1801 में प्रकाशित हुई, जो संस्कृत में रचे कई हिन्दू विधि ग्रंथों पर आधारित थी। तब से यूरोप में भारतीय समाज संबंधी जानकारी के लिए लोग सर्वाधिक 'मनु' की ही ओर मुड़ने लगे, क्योंकि ऐसा समझा जाता था कि वह ग्रंथ भारतीय सामाज के उद्भव काल का था और इस समय भी प्रांसगिक था। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक के भारतीय जीवन पर उसका नियंत्रण रहा था। अतः वह भारतीय जीवन के सच्चे प्रतिमानों का प्रतिनिधित्व करता था।

भारत जैसे प्राचीन सभ्यता वाले देशों में दास प्रथा के संबंध में तथ्य एकत्रित करने के प्रयास किये गए। इस दृष्टिकोण से भारत में पहले–पहल रूचि लेने वालों में मॉन्टेस्क्यू थे। उनके अनुसार ''भारतीय अपने दासों को सहज ही आजादी दे देते हैं, उनसे वैवाहिक संबंध स्थापित कर लेते हैं और उनके साथ अपने बच्चों जैसा व्यवहार करते हैं।[1]

मॉन्टेस्क्यू क`मत तथा अन्य मतों के आधार ही मूल तथा वर्नियर जैसे यांत्रियों के वृतान्त थे। कुछ दिनों के उपरान्त ऐबे रैनाल ने पैरिआ लोगों की कठिनाईयों का वर्णन किया, उनके मतानुसार वे

दक्षिण भारत के खेतिहर दास थे और अछूत भी थे।[2] उनकी कृतियों से हिन्दू व्यापारियों के घरेलू दासों के संबंध में भी कुछ जानकारी मिलती है।[3]

19वीं शताब्दी के प्रारंभ में आबे दुब्बा का उल्लेखनीय ग्रंथ प्रकाशित हुआ। वे दक्षिण भारत के लोगों के बीच कई वर्षो तक रह चुके थे। इस ग्रंथ के माध्यम से लेखक ने अपने विचार को कृष्णा नदी के दक्षिणवर्त्ती प्रदेश के लोगों तक ही सीमित रखा है।

इसी अवधि में ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपने एक अधिकारी को अपने अधीनस्थ सभी इलाकों के व्यापक सर्वेक्षण के लिए प्रतिनियुक्त किया। डॉ0 हैमिल्टन (बुखानन) नामक इस अधिकारी ने अंग्रेजों के अधिकार के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र का कई वर्षों तक दौरा किया । उन्होंने मैसूर–कनारा–कुर्ग क्षेत्र एवं असम, बंगाल, बिहार और पूर्वी उत्तरप्रदेश के भागों के संबंध में यथा तथ्य एवं रोचक वृतान्त दिय हैं।[4] यद्यपि बुखानन का उद्देश्य भारतीय जीवन के सभी पहलुओं का अध्ययन करना था। अतः उन्होंने दास–प्रथा पर अपना व्यक्तिगत मत व्यक्त नहीं किया।

दास–प्रथा के पक्ष अथवा विपक्ष में अनेक अंग्रेज अफसरों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं। एक ओर जहॉ सर विलियम जोन्स जैसे लोगों ने कलकत्ते के गलियों में दासरूप में बेचे जाने वाले बच्चों की दुर्गति की निन्दा की है, वही दूसरी ओर अन्य लोगों ने इसका उपयोग अपना व्यक्तिगत लाभ के लिए किया।[5] अपने पत्रों एवं टिप्पणियों के रूप में विद्यमान (वृहद् ग्रंथ के रूप में संगृहीत एवं ब्रिटिश संसद द्वारा प्रकाशित)[6] प्रमाणों के अतिरिक्त वे हमारे लिए कई पुस्तकें छोड़ गए हैं। अन्य कृतियों में उल्लेखनीय हैः स्लेवरी एण्ड ट्रेड इन ब्रिटिश इण्डिया[7] तथा जे0 पेग्स एवं ड0ल्यू एडम के ग्रंथ यथा क्रमशः ईस्ट इंडियन स्लेवरी'' और ''ला एण्ड कस्टम ऑफ स्लेवरी इन ब्रिटिश इण्डिया[8] कोल ब्रुक जिसने हिन्दू विधि संहिता में दासों की स्थिति का खुलासा करते हुए पहली टिप्पणी लिखी और जो ब्रिटिश संसद द्वारा प्रकाशित ग्रंथ में शामिल है,[9] जैसे लोगों द्वारा इस प्रथा के पक्ष में जिस रूप में यह बंगाल में प्रचलित थी[10] वकालत किये जाने के बावजूद अधिकारी वर्ग इस समस्या की उपेक्षा नहीं कर सकता था क्योंकि भारतीय रियासतों के अधिकारांतर्गत प्रदेशों से भागकर दास अंग्रेजी क्षेत्र में प्रवेश करते थे और अपनी स्वाधीनता के अधिकार के मॉग करते थे।[11]

भारत में दास प्रथा की समाप्ति के 1843 के आन्दोलन से कुछ महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध होती है। ये दस्तावेज स्पष्टतया सिद्ध करते है कि दासप्रथा देश के लगभग सभी भागों में व्याप्त थी और हर व्यक्ति की धारणा थी कि यह हिन्दू–विधि सम्मत है और इसका अस्तित्व प्राचीन काल से चला आ रहा है। मध्यकाल में दासों के क्रय–विक्रय को पंजीकृत करने वाले दस्तावेज प्रमाणित करते है कि धर्म–ग्रंथों के ज्ञान के लिए प्रसिद्ध मैथिल ब्राहम्णों में भी दास रखने की प्रथा मौजूद थी।[12]

फिर भी अन्य देशो में जहॉ यह प्रथा अब सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के अनुकूल नहीं रह गई थी, इसके अस्तित्व के विरूद्ध आन्दोलन लगातार उभरता रहा, जिससे कई ऐतिहासिक अध्ययनों का सूत्रपात हुआ। 'वैलो'[13] ने अपनी पुस्तक के एक पूरे अध्याय में भारत में दास प्रथा का विवेचन–विश्लेषण किया है। प्रारंभ में वे दियोदोरस और स्त्रैबों जैसे यूनानी और रोमन ग्रंथकारों द्वारा उल्लिखित तथ्यों का उपयोग करते हैं और बाद में 'मनु' के दृष्टिकोण का सारंश प्रस्तुत करते है। यद्यपि लेखक ने 'शूद्र' और 'दास' को एक माना है, पर उन्होंने दासों के विविध प्रकारों का ठीक–ठीक वर्णन किया है।

19वीं शदी के अंत में 'लतूर्नू' ने प्राचीन के साथ–साथ समकालीन भारत में दासता की समस्या का अध्ययन किया। उनका ग्रथ उल्लेखनीय है, क्योंकि उन्होंने ऐतिहासिक तथ्यों के साथ–साथ विभिन्न भारतीय जन–जातियों के अध्ययन से प्राप्त नृवेशानिक सामग्री को एक साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। प्राचीन भारत में दास प्रथा के विषय पर अपने लेखों में जॉली ने केवल हिन्दू विधि–संहिता का सार प्रस्तुत किया है।

19वीं शदी के अंत में भारत के विद्वानों ने इस देश की समाजशास्त्रीय समस्याओं में रूचि लेना प्रारंभ किया। आर0 फिक का ग्रथ 'द सोशल आरगेनाइजेशन इननार्थ ईस्ट इंडिया'[16] बहुत शीध्र ही श्रेष्ठ कृति के रूप में लोकप्रिय हो गया। उनके अनुसार हर बड़ा भूस्वामी हर धनी व्यापरी अपने निजी दासों के अतिरिक्त दैनिक वेतन पर मजदूर काम पर लगाया करता था।[17] इन दासों की दशा के संबंध में वे

कहते हैं, ''कुछ छिटपुट उदाहरणों को छोड़कर, उनकी दशा दयनीय थी। वे प्रायः पीटे जाते थे, उन्हें कैद कर लिया जाता था और गंदा खाना दिया जाता था।''[18] घरेलू दासों के विषय में वह लिखते है, ''घरेलू दास की स्थिति घृणित वर्गो के लोगों की अपेक्षा अधिक अच्छी थी क्योंकि घर में उसकी उपयोगिता थी।[19] फिक पूर्वी और पश्चिमी भारत के संबंध में कहते है, ''जातकों में हम हर स्थल पर ब्राह्म्णों को हल चलाते देखते हैं। इनमें केवल ऐसे ही ब्राह्म्ण नहीं थे, जो अपनी जमीन पर दासों और दैनिक श्रमिकों द्वारा खेती रखते थे, बल्कि वैसे छोटे किसान भी थे जो अपनी जमीन स्वयं जोतते थे।[20]

कुछ ही समय के बाद श्रीमती रीज डेविड़स ने केवल जातकों के आधार पर नहीं बल्कि संपूर्ण त्रिपिटक का आधार लेकर इससे भिन्न धारण व्यक्त की। रीज डैविडस ने ये तक अपनी 'बुद्धिस्ट इंडिया'[21] में प्रस्तुत किये और श्रीमती रीज डैविड्स ने कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया[22] के पूर्वतर्ती बौद्ध साहित्य के अनुसार 'आर्थिक परिस्थितियॉ' शीर्षक अध्याय में इस विषय को पुनः उठाया।

यद्यपि दास प्रथा बहुत यातनाकारक रही, तथापि सामाजिक–विकास की एक विशिष्ट अवस्था में बहुत आवश्यक थी और उसे वैध संस्था माना गया था। प्राचीन संसार में कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि किसी दिन दास प्रथा को अवैध समझाा जाएगा। युद्ध वंदियों की तो यह स्वाभाविक नियति थी।[23] धर्म की भूमिका इसमें यह थी कि यह दास प्रथा को तब तक सहन करता रहे जब तक समाज के प्रभावशाली वर्ग इसे आवश्यक समझते रहें । एक बार ज्योंही इस आवश्यकता की पूर्ति हो गई, फिर इसी धर्म ने अनेक लोगों को दास प्रथा के लिए संघर्ष के लिए प्रेरित किया।

इसके प्रमाण है दास प्रथा–समाप्ति समर्थक ने सैकड़ो संस्थाएँ जो सारे इंगलैंड में 19वीं सदी में स्थापित की गई थी और जिनके अधिकांश सदस्य पक्के ईसाई थे। नेपाल में महराजा भी, जिन्होंने 1925 ई0 में दास प्रथा की समाप्ति की घोषण की अपने पूर्वजों से कोई कम श्रद्धालु व्यक्ति न थे। उन्होंनं इस परिवर्तन का विधान धर्म–संहिता में करवाया, जिसमें तर्क यह दिया कि श्रमिकों को मुक्त होने पर उत्पादन में वृद्धि की संभावना होगी[24] और इस प्रकार आवश्यकता पड़ने पर वज्र से भी कठोर इन नियमों को तोड़ने में उन्होंने किसी प्रकार कि हिचकिचाहट नहीं दिखाई।

इस तरह यह प्रथम कारण है जो हमारे लिए भारत में दास प्रथा का अध्ययन नए सिरे से शुरू करने का औचित्य सिद्ध करता है। यह आवश्यक है कि दास प्रथा को इसके ऐतिहासिक संदर्भ में रखकर इसका अध्ययन किया जाए और इसके विकास को समग्र ऐतिहासिक विकास से संबद्ध करके देखा जाए। इसके अलावा यह भी जरूरी है कि जो समाज दासप्रथा से परिचित रहा, जहॉ यह व्यवहार में रही अथवा जिसने इसका उन्मूलन कर दिया, उस समाज की वास्तविक बनावट के स्तर की उपेक्षा न कीजाय। इस क्षेत्र में पुशुपालन, कृषि और धातु प्रयोग के ज्ञान का भी हाथ रहा है।

इस प्रकार ये ही कुछ कारण है, जिन्होंने हमें प्राचीन भारत में दासप्रथा के अध्ययन की ओर प्रेरित किया है। भारत में दासप्रथा का इतिहास ईसवी सन् के प्रारंभ होने से पूर्व की कम–से–कम पन्द्रह शताब्दियों में विस्तृत है।

संदर्भ सूची

1. De lesprit des lios liv XIV, ch. XV, P 218
2. Histoire Philosphique …….. des establishments des europeens dans les deux indes, vol I P.78
3. Ibid vol. IV, P.424
4. History of Eastern India Vol II & III M. Martin.
5. अंजरकैंडी फर्म पर कुकदमा, स्लेवरी इन ब्रिटिश इण्डिया, डी आर0 बानाजी पृ0 60
6. पार्लियामेन्टी पेपर्स ऑन स्लेवरी इन इण्डिया, लंदन 1834
7. स्लेवरी एण्ड स्लेव ट्रेड इन ब्रिटिश इण्डिया, लंदन 1841
8. स्लेवरी इन ब्रिटिश इण्डिया और स्लेवरी एण्ड स्लेभ ट्रेड इन ब्रिटिश इण्डिया
9. ब्रिटिश पार्लियामेन्ट्री पेपर्स
10. रिमार्कस ऑन द हस्बेन्डरी एण्ड इन्टरनल कॉमर्स आफ बंगाल पृ–129–32
11. ब्रिटिश पार्लियामेन्ट्री पेपर्स, पृ0 42

12. जर्नल एशियाटिक पेरिस 1950, जैन साहित्य और इतिहास –नाथूराम प्रेमी
13. Histoire de I' eschavage dans l'anti quite
14. स्लेवरी ऐज एन इण्डस्टरीयल सिस्टम, एच0जे0नी0 नाइबोर
15. द सोशल आर्गेनाईजेशन इन नार्थ–इस्ट इण्डिया, आर फीक
16. वही–पृ0 305
17. वही–पृ0 310
18. वही–पृ0 312
19. वही–पृ0 3242
20. बुधिस्ट इण्डिया, लंदन 1903
21. कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, 1
22. L' Esclavage, Paris, श्रीमती सिमों पृ0 217
23. वही–पृ0 124
24. वही–पृ0 125